RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary 2021; 6(2):173-176
ISSN: 2455-3085 (Online)
https://doi.org/10.31305/rrijm.2021.v06.i02.028
Research Paper
Double Blind Peer Reviewed/Refereed Journal
https://www.rrjournals.com/

मार्कण्डेय की कहानियों में कृषक समाज का स्वरूप : विश्लेषण

Arvind Kumar Sharma

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

ABSTRACT

मार्कण्डेय एक ग्राम कथाकार थे। गांव का किसानी समाज उनका अपना जाना पहचाना समाज है जिसे उन्होंने कई दृष्टियों से देखा और समझा है। उनकी कहानियों में हमें आजादी के बाद के एक विशाल ग्रामीण जीवन एवं किसानी समाज के दर्शन देखने को मिलते है। पच्चास और साठ के दशक राजनीतिक हलचलों से भरे थे। उस दौर में मार्कण्डेय ने ऐसी कहानियाँ लिखी, जो बताती हैं कि आम किसानों के अन्तर्मन में क्या उमड़–घुमड़ रहा था और वे आधुनिक विकास से अपने सम्पर्क को किस रूप में देख रहे थे। उनकी कहानियों में कृषकों के बाहरी संघर्ष के साथ ही साथ उनके भीतर के संघर्ष भी उभर कर सामने आये। उनकी कहानियों में कृषक समाज अपने तमाम तरह के अन्तर्विरोधों के साथ उपस्थित है। मार्कण्डेय का जीवन गांव की मिट्टी से जुड़ा था। इसलिए उन्होंने इस समाज को अलग से नहीं बल्कि भारतीय समय, समाज एवं राजनीति के साथ विश्लेषित किया है। भारत में आधुनिकीकरण के फलस्वरूप किसानों का जीवन अभाव एवं कठिन संघर्षों से गुजर रहा था, किसान सहसा बहुत अलग–अलग हो गये थे ऐसे में मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में इन परिस्थितियों का सच्चाई से चित्रण ही नहीं किया, बल्कि भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में किसानों का महत्व दिखाते हुए उनके अधिकारों के लिए लड़ाई भी लड़ी है। उन्होंने अपनी कहानियों में निरूत्तर कर देने वाली स्पष्टवादिता से उन परिस्थितियों का जिक्र किया है जो भूमिहीन या यूं कहें कि छोटी भूमि वाले किसानों की गरीब जिन्दगी में एक लम्बे समय से चली आ रही है।

Keywords: ग्रामीण जीवन, आर्थिक परिवेश, सामाजिक असमानता, आर्थिक जीवन।

Article Publication

Published Online: 14-Feb-2021

Author's Correspondence

Arvind Kumar Sharma

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

arvindsh.91@gmail.com

© 2021The Authors. Published by *Research Review Journals*

This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

शोध विस्तार–

ग्रामीण समाज में किसानों की समस्याओं का भयावह रूप सामन्त काल से ही दिखाई देने लगता है। सामन्तवादी व्यवस्था में 'जमींदारी' क्षेत्र की जमीन पर तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर सामन्त का ही अधिकार होता था। उनके प्रतिनिधि के रूप में गांव में मालगुजार होते थे जोकि भूमि के बड़े हिस्से के मालिक होते थे और कुछ टुकड़ों पर खेती करने के लिए गांव के किसानों को बाध्य करते थे। शेष लोग मजदूर होते थे। यदि सामन्त का कोई कारिन्दा गांव में आता था तो जिस किसान के चने की फसल बहुत अच्छी होती थी, कारिन्दा उसमें अपने घोड़े को खुला छोड़ देता था। किसान को विरोध करने का कोई अधिकार नहीं होता था। सामन्त या राजा की सवारी जिस रास्ते से निकलती थी उस रास्ते की फसल चौपट हो जाती थी। सामन्त जब शिकार के लिए निकलता था तो किसानों की 'खेदा' की ड्यूटी लगायी जाती थी और 'खेदा' के लिए जाना किसान का अनिवार्य कर्तव्य होता था। इन सब समस्याओं के बाद भी 'जमींदार' को लगान पूरा देना पड़ता था। फसल न होने, अकाल होने या अतिवृष्टि से फसल नष्ट हो जाने की स्थिति में भी किसान को अपना बैल बेचकर लगान भरना पड़ता था अन्यथा लगान वसूल करने वाले मालगुजारों और कारिन्दों की शारीरिक यातना सहनी पड़ती थी।[1]

अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजों द्वारा स्थायी बन्दोबस्त के माध्यम से भूमि सुधार का प्रयास कर किसानों को भूमि स्वामित्व का अधिकार तो दिया गया किन्तु लगान दुगुना कर दिया गया। लगान वसूलने का अधिकार देशी सामन्तों को दिया गया और उसका एक अंश ब्रिटिश शासन को देने का प्रावधान किया गया। अकाल से फसल नष्ट हो जाने पर भी तयशुदा लगान सख्ती से वसूल किया जाता

रहा। यही नहीं अंग्रेजों ने कुछ व्यावसायिक फसलों की शुरूआत भी की जिसमें चाय, अफीम और नील की खेती प्रमुख थी, जिसका उद्देश्य साम्राज्यवादी देशों की जरूरतों को पूरा करना था। इससे साम्राज्यवादी देशें को सस्ते दामों में ये चीजें उपलब्ध होने लगी।

बींसवी शताब्दी के दूसरे–तीसरे दशक में गांधीजी के आन्दोलन और वामदलों के गठन के साथ किसानों में अपने अधिकार की चेतना जागृत हुई किन्तु इस चेतना को आजादी प्राप्ति की दिशा में मोड़ दिया गया। यह चेतना सामाजिक यथार्थ की चेतना से जागृत न होकर राजनैतिक यथार्थ की चेतना से जागृत हुई। गांधीजी के आह्वान पर किसानों ने जमींदारों को लगान न देने का आंदोलन शुरू किया। जमींदारों ने इस आंदोलन को कुचलने के लिए सत्ता का सहारा लिया जिसके कारण चौरी–चौरा जैसी घटनाऐं हुई और गांधीजी ने जमींदारों को लगान न देने का फरमान वापस ले लिया। किसान संगठनों ने अपनी विभिन्न मांगों को लेकर लम्बा आंदोलन किया, परन्तु वह आंदोलन भी राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा मात्र बनकर रह गया। भारतीय कृषक वर्ग की हालत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।[2]

इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय ग्रामीण जीवन में निवास करने वाले किसानी समाज की स्थिति शुरू से ही दयनीय स्थिति में रहीं, उसके श्रम का उचित महनताना उसे कभी नहीं मिला, यहीं नहीं सामन्तों, जमींदारों, पूंजीपतियों ने उन्हें अपने–अपने तरीके से खूब लूटा–खसोटा, उनकी फसल बर्बाद की तथा उनकी जमीन–जायदाद हड़प ली जिसके फलस्वरूप वे गरीब किसान मजदूरी करने पर विवश हुए। उनकी स्थिति में कभी भी सुधार नहीं हुआ बल्कि यह और भी बिगड़ती चली गयी और यह स्थिति आज भी कायम है जिससे किसान आत्महत्याऐं कर रहे है। ऐस में एक सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे किसानों को उनकी भूमि से बेदखल न किया जाय तथा उन्हें उनके श्रम का उचित मेहनताना मिले जिससे वे खुली हवा में चैन की सांस लेते हुए अपनी जिन्दगी जी सके।

मार्कण्डेय की कहानियों में इन उपर्युक्त स्थितियों का बड़े ही संजीदगी के साथ वर्णन किया गया है, यहीं नहीं किसानों की इस हो रहे दुर्दशा से वे बेहद चिंतित थे तथा उनके उत्थान एवं सामाजिक उन्नयन के लिए आजीवन लड़ाई लड़ते रहे।

मार्कण्डेय के प्रथम कहानी संग्रह 'पान–फूल' से लेकर अंतिम कहानी संग्रह 'बीच के लोग' तक की कहानियों में किसानी समाज अपने तमाम तरह के अंतर्विरोधों के साथ मौजूद है। 'हंसा जाई अकेला' मार्कण्डेय की नयी कहानी के दौर की एक चर्चित कहानी है। यह एक आम कृषक की अकेलेपन की कथा है। यह अकेलापन एक सामाजिक यथार्थ के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। आजादी के पश्चात् कृषकों का यह ख्वाब टूट गया था कि अब उनका अपना 'राष्ट्र' होगा। वे अब भी 'राष्ट्र के हाशिए पर थे। राजनीति भोले–भाले किसनों को किस तरह अपना शिकार बना रही थी, हंसा का अकेलापन इस सच्चाई को बयॉ करता है।' आजादी के बाद गाँवों में रहने वाले किसानों के आर्थिक शोषण का अनुभूतिपरक चित्रण मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में किया है। उनकी कहानियों में आर्थिक विपन्नता में डूबे हुए किसान–मजदूर का आर्थिक शोषण करने में ठाकुर, जमींदार, पटवारी, ठेकेदार, अधिकारी वर्ग तथा पुलिस के लोग जोंक की तरह लगे हुए हैं।[3]

मार्कण्डेय की कहानी 'महुए की पेड़' की दुखना एक अबला, विधवा एवं बेसहारा नारी है ''दुखना के चरित्र के अंदर से जैसे हमारी समस्त त्रस्त एवं पददलित नारी जाति का स्वर मुखरित हो उठा है।'' ''कोई पच्चीस बरस बीते होंगे, जब दुखना का पति जीवित था। दस बीघे का काश्तकार था, वह जेठ की तड़पती धूप में ईख की सिंचाई हो रही थी। बड़ी मुश्किल से कुएँ पर बारी आयी थी।'' वह रात–दिन उसी कुएँ पर रह जाता, दुखना खाना–पानी लेकर वहीं जाती और देर तक बैठी रहती। पर वह कहता, ''तू क्यों यहा सती हो रही है। मैं तो अभी जीता ही हूँ, घर चल। आज सिंचाई खतम करके लौटता हूँ।'' दुखना घर पर पहुँची भी न होगी, कि पुरवट हाँकते हाँकते बेहोश हो गया। लोग उठा–पुठाकर घर लाये, दुखना देखते ही चिल्ला–चिल्लाकर रोने लगी। उसके रूखे, खुरदुरे हाँथों में अपना मुँह रगड़ती रही, पर वह होश में नहीं आया। बड़ा तेज बुखार, जैसे सारा शरीर जल रहा हो। दुखना ने बड़ी दौड़–धूप की। लोगों के सामने हाथ फैलाया, गिड़गिड़ाई, पर कोई काम न आया। अन्त में वह हमेशा के लिए चल बसा और दूसरे दिन ही ठाकुर ने वेदखली का हुकुमनामा भेज दिया।[4] इस तरह किसानों एवं मजदूरों का शोषण होता था, उनकी जमीन–जायदाद हड़प ली जाती थी तथा विरोध करने पर उन्हें प्रताड़ित भी किया जाता था जिसका सजीव चित्रण मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में किया है।

मार्कण्डेय 'आदमी की दुम कहानी में लिखते हैं, "अगर जीवन का अर्थ चाहते हो तो जीवन में धँसों, वहीं खपो और मरो। वही आधार है, वही सत्य को देह दे कर उसे उजागर करता है।" "किताबों में नहीं मिलेगा, गुरुओं के पास नहीं मिलेगा, जीवन ही इसका ठोस आधार है।

मार्कण्डेय गाँव के किसानों का जीवन देख रहे थे, वहाँ संघर्ष करने का स्तर बहुत नीचे था और दमन तथा निराशा ज्यादा थी। वहाँ भूमि सुधार और विकास–योजनाओं के चिह्न नहीं थे। विकास का एक रूप है नहर का पानी पहुँचना। इस विकास में किसान के खेत

चले जाते हैं। 'आदर्श कुक्कुटगृह' कहानी में रमजान इस योजना के अन्तर्गत मुर्गियाँ पालता है। वह सपना देखता है कि मुर्गियों की बदौलत वह समृद्ध होता जा रहा है।[5]

इस तरह रमजान अवाक भी होता है और निराश भी। इस तरह मार्कण्डेय की कहानियाँ भले ही कृषकों के जीवन पर आधरित हों, पर इनमें उनके युग की निराशा और निस्सहायता की स्पष्ट छाप है।

भारत में आजादी मिलने के बाद जमींदारी प्रथा और रियासती प्रथा का उन्मूलन होता है इसके बावजूद सामन्ती स्वार्थ पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है। जिससे किसानों को, विशेष तौर पर छोटे और गरीब मेहनतकशों को अपने जीवन में आजादी का स्वाद ही नहीं मिल पाया। इन सब पर मार्कण्डेय की गहरी दृष्टि है। असल में प्रतापगढ़ में इण्टर की पढ़ाई करने के दौरान उन्होंने वहाँ चल रहे किसान आन्दोलन को बहुत नजदीक से देखा। यही नहीं ठाकुरों, जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण एवं गरीबी की भयावहता को भी अपनी आँखों से देखा था। उन्हीं दिनों उनकी चेतना में सामाजिक परिवर्तन के विचार प्रस्फुटित हुए। उनके अंदर किसान–संघर्ष के माध्यम से परिवर्तन की विचारधारा घर कर जाती है। इस प्रकार मार्कण्डेय संघर्ष के दो पक्षों में न्याय वाले पक्ष से आकृष्ट होकर विचारधारा की ओर जाते हैं। तथा इसके लिए क्रांतिकारी परिवर्तन को एकमात्र उपाय मानते हैं जिसकी झलक उनकी कई कहानियों में देखने को मिलती है। कहानी 'बीच के लोग' में बुझावन एक समझदार और ईमानदार किसान है। वह परिश्रम से अपनी खेती करता है, परन्तु यह खेत (कागज पर) ठाकुर हरदयाल के नाम है। बुझावन ने अपने खेत में आलू बोये थे जिसे हरदयाल के आदमी उखाड़ देते हैं। तब उस पर बड़ा हंगामा होता है। हरदयाल के आदमी लाठियाँ लेकर आते हैं तो बुझावन का बेटा मनरा भी दलित लोगों की टोली लेकर आता है। यह देखकर मनरा के पिता बुझावन का सिर चकराता है। वह अपने बेटे से कहता है झगड़ा मत करो पुलिस थाने में जाएगें। स्पष्ट है कि ग्रामीण किसान अब परिवर्तन चाहते हैं जिसके लिए वे सबकुछ करने को तैयार हैं।

'मन के मोड़' कहानी में एक साधारण किसान का भाई जीतू, ठाकुर के बेटे के साथ अखाड़े में कुश्ती लड़ता है। "नौजवानों ने जीतू को देखते ही आवाज दी" आ गया शेर! "आज हो जाए फैसला, जै बजरंग बली की!" और जीतू लँगोट बाँधकर अखाड़े में उतर गया। उधर से ठाकुर साहब का लड़का भी चमकती छीट की कसी चड्ढ़ी चढ़ाये मैदान में आ गया।.... आँख मारते दोनों किशोर पहलवान अखाड़े में जुट पड़े। "देह जीतू की बहुत कम थी। ठाकुर के लड़के ने उसकी गरदन पकड़कर खींची तो जीतू के घुटने जमीन पर टिक गयेय पर वहीं से जीतू ने उसके हाथ पकड़, घुमकर वह दाँव मारा कि ठाकुर का लड़का चारों खाने चित। चारों ओर खुशी की आवाज गूंज गयी। ठाकुर का मन दुःखी हो गया ।'' इससे हमें यह पता चलता है कि आज किसान भी जागृत होकर जमीनदार के साथ अखाड़े में उतरने के लिए तैयार बैठा है, पहले यह नहीं था।[6]

भारतीय ग्रामीण जीवन में कृषि, खेत, फसल अन्न ही किसान के जीवन के आधार होते हैं जिसको व्यवस्थित करने के लिए वह हर सम्भव प्रयास करता इसी खेती से ही उसके जीवन की सभी आवश्यकताओं जन्म–मरण, शादी–विवाह आदि की पूर्ति होती है। फसल अच्छी हुई तब तो ठीक है, नहीं तो वह परेशान हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसे अपने तथा अपने परिवार के जीविकोपार्जन के लिए पूँजीपतियों, जमींदारों, महाजनों आदि के दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं। वह उनसे कर्ज लेता है जिसे वे शूद आदि पर देने के लिए तैयार होते हैं। समय पर पैसा वापस न करने पर फिर वे शूद का शूद लेते हैं जिसके फलस्वरूप किसान कर्ज के भार से दब जाता है और अन्ततोगत्वा उसकी जीमन हड़प ली जाती है जिसके फलस्वरूप अन्त में वह किसान अपने तथा अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए मजदूरी करते हुए अपने प्राणों को त्याग देता है। मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन में किसानों के इन पहलुओं को बड़े ही संजीदगी से उभारा है।

इसी प्रकार मार्कण्डेय की कहानी मधुपुर के सिवान का एक कोना' में कर्ज लेने के परिणामस्वरूप उसकी अगली पीढ़ी ही गीरो रख ली जाती है। ठाकुर मुन्नन को पीट रहा है। वह उसके सीने पर चढ़कर मनमाना घूसे चला रहा था और मुन्नन चुप था, जैसे मर चुका हो। बहुत मार पड़ने के कारण वह बेहोश हो गया था नरेश घर से मजूरी लेने आया था। मुन्नन की यह हालत देखकर उससे जा सटा और उसके सिर को अपनी गोद में लेकर सहलाने लगा। वह कहता है– ''बड़ी बात आती है, ठाकुर इसके भी माँ–बाप होते, कोई सिर पर छाँह होती, घर द्वार होता तो इस तरह बात न निकलती। पचास रूपये करज लेकर इसका बाप क्या मरा, बेचारे की जिनगी ही गिरों धर ली गयी। आखिर क्या कसूर था इस बेचारे का ? ''''' इस प्रकार हम देखते हैं कि किसान द्वारा लिये गये कर्ज को उसकी किसी न किसी पीढ़ी को ही वापस करना पड़ता था। कर्ज वापस न करने पर उसे बंधक के तौर पर रख लिया जाता था, और यह हमेशा चलता रहता था ऐसा शोषण उनके साथ होता था जिसका बड़ा ही मार्मिक वर्णन मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में किया है।[7]

आजादी के बाद तरह–तरह की विकास योजनाएं, एवं रोजी–रोजगार के नये–नये क्षेत्र शुरू होते हैं, जिसका लाभ गरीबों को नहीं मिल पाता बल्कि इसका लाभ नौकरशाह, जमींदार, सूदखोर, ठेकेदार और दलाल लोग उठा लेते हैं जिससे आम आदमी अपने आप को नये

सिरे से ठगा महसूस करता है। उदाहरण स्वरूप 'भूदान आन्दोलन' को देखें तो यह सही मायने में भारतीय शासकवर्ग के हित में चलाया गया एक सुनियोजित सरकारी मुहिम था। भूदान आन्दोलन आचार्य विनोवा भावे द्वारा 18 अप्रैल, 1951 को प्रारम्भ किया गया था। इस आंदोलन में गाँव के बड़े जमींदार और ठाकुर लोगों से 176 भूमी ली जाती थी। इकट्ठा हुई भूमि भूमिहिनों में दान के रूप में दे दी जाती थी जिसका उद्देश्य था जमींदारों का हृदय परिवर्तन और ग्राम व्यवस्था में समानता लाना। लेकिन इसका फायदा शासक वर्गों ने उठाया। इसका आभास पहले से ही उन भूमिहीन एवं गरीब लोगों को था जिसका जिक्र मार्कण्डेय ने अपनी कहानी 'भूदान' में किया है।

मार्कण्डेय की कहानी 'भूदान' में रामजतन दलित मजदूर है और वह भूदान में मिलने वाली जमीन की खुशी में झूम रहा है। रामजतन ठाकुर के यहाँ मजदूरी करता है इसलिए वह ठाकुर के दबाव में है। वह ठाकुर की पहुँच एवं धूर्तता से रूबरू है इसलिए वह अपनी जमीन भूदान में जमीन मिलने की लालच में ठाकुर के नाम कर देता है। भूदान के नाम पर उसे जिस जमीन का कागज मिलता है, वह तो बहुत पहले ही गोमती के पेट में समा गई है। रामजतन को ठाकुर कामकाज से भी छुट्टी मिल गई है 'कुछ के पास मजुरी– धतुरी का सहारा है', पर रामजतन की तो हलवाही भी छुड़ा दी गयी। पिछले कई महिनों से नहर में फावड़ा चलाते चलाते उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया है। महीने भर से साँस की बीमारी के कारण वह चारपाई में पड़ा हॉफ रहा है। बार–बार उसकी साँसें बढ़ जाती हैं, उसका शरीर काँपने लगता है।[8]

निष्कर्ष–

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्कण्डेय की कहानियाँ यह बताती हैं कि सरकारी विकास योजनाओं में सबसे अधिक लाभ जमींदार, ठाकुर एवं महाजनों को हुई तथा सर्वाधिक नुकसान किसान, मजदूर, गरीब आदि को उठाना पड़ा। इस प्रकार मार्कण्डेय एक सामाजिक चेतना सम्पन्न कहानीकार थे। उनकी कहानियों में स्वातंन्त्र्योत्तर भारत का ग्रामीण समाज जिसमें किसान, मजदूर कामगार आदि निवास करते हैं, अपनी खामी खूबियों के साथ जीवंत हो उठता है। स्वातंन्त्र्योत्तर काल में भारतीय गाँवों में हुए परिवर्तनों को उन्होंने यथार्थता से विश्लेषित करने का प्रयास किया है। उनकी कहानियाँ यह दर्शाती है कि गाँव में निवास करने वाले गरीब किसानों का शोषण सबसे अधिक पूंजीपतियों, जमींदारों, महाजनों तथा सरकारी अफसरों आदि ने ही किया है यहीं नहीं राजनीति का शिकार सबसे अधिक यही वर्ग हुआ है। भ्रष्ट अफसरों और राजनेताओं की मिली भगत ने गरीब आदमी और किसानी समाज को असहाय और दर–दर की ठोकर खाने पर मजबूर कर दिया। उनका शोषण कई स्तरों पर होता रहा जिसके फलस्वरूप उनकी जमीन–जायदाद गिरवी कर ली जाती थी। गाँव के ये लोग जितना राजनीतिक आर्थिक स्तर पर शोषण के शिकार होते रहे हैं, उतना संभवतः अपनी गुलामी के दिनों में भी नहीं हुए थे जिसका बड़ा ही सजीव वर्णन मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में किया है। तथा वे इनके वास्तविक उत्थान तथा सामाजिक उन्नयन के लिए क्रांतिकारी परिर्वन एवं जागरूकता को एकमात्र उपाय मानते हैं।

इस प्रकार मार्कण्डेय प्रगतिशील विचारधारा के कहानीकार थे, ग्रामीण जीवन में सामाजिक परिवर्तन के अकांक्षी थे जिससे किसानों, मजदूरों एवं गरीब लोगों को उनका हक मिले और ये खुशहाल एवं सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। इसके लिए वे जीवनपर्यन्त प्रयत्नशील रहे। उन्होंने स्वाधीनताकालीन ग्रामीण जीवन के इस कटू यथार्थ को पूरी तन्मयता के साथ देखा–परखा तथा अपनी कहानियों में चित्रित किया।

संदर्भ सूची–

1. डॉ. भैरूलाल गर्ग, स्वातंन्त्र्योतर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, पृ. 44
2. डॉ. महेश दिवाकर, हिन्दी नई कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन, सुमन प्रकाशन दिल्ली, पृ. 75
3. डॉ. विवेकीराय, हिन्दी कहानी : समीक्षा और संदर्भ, पृ. 68
4. मार्कण्डेय, महुए की पेड, पृ. 36
5. मार्कण्डेय 'आदमी की दुम, पृ. 63
6. मार्कण्डेय, 'मन के मोड़' पृ. 13
7. मार्कण्डेय, मधुपुर के सिवान का एक कोना' पृ. 53
8. मार्कण्डेय 'भूदान', पृ. 14